ज्ञानविविधा
कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)
IIFS Impact Factor-2.25
Vol.-2; Issue-4 (Oct.-Dec.) 2025
Page No.- 433-436
©2025 Gyanvividha
https://journal.gyanvividha.com

Author's :
डॉ. अभिशेक कुमार सिन्हा
पूर्व शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिंदी विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय
कामेश्वरनगर, दरभंगा.

Corresponding Author :
डॉ. अभिशेक कुमार सिन्हा
पूर्व शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिंदी विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय
कामेश्वरनगर, दरभंगा.

'ठाकुर का कुआँ' में ग्रामीण समाज की मार्मिकता एवं मुख्य स्त्री–पात्र 'गंगी' की मनःस्थिति का अध्ययन

सारांश : मुंशी प्रेमचंद की कहानी 'ठाकुर का कुआँ' भारतीय ग्रामीण समाज में व्याप्त जातिवाद, छुआछूत, आर्थिक शोषण एवं लैंगिक उत्पीड़न के बहुस्तरीय अंतर्संबंधों को उद्घाटित करता है। इस कहानी का केंद्रीय प्रतिपाद्य गंगी की मनःस्थिति के चार मनोवैज्ञानिक चरणों– विद्रोही चेतना, भय-संत्रास, विवशता, एवं पराजय का विश्लेषण है। 'चौकन्नी दृष्टि से शत्रु के किले में सुराख करता सिपाही', 'माफी की रत्ती-भर उम्मीद नहीं', 'शेर के मुँह से भयानक' ठाकुर का दरवाजा, तथा 'धड़ाम' से गिरता घड़ा–ये बिंब सिद्ध करते हैं कि 'कुआँ' जलस्रोत न होकर 'सामाजिक सत्ता का दुर्ग' है। जोखू द्वारा 'मैला-गंदा पानी' पीना 'विकल्पहीनता की पराकाष्ठा' को दर्शाता है। 'बदनसीब' का ठप्पा और 'रस्सी छूटने' की दहशत जब तक समाज की नसों में दौड़ती रहेगी, तब तक संवैधानिक समानता का स्वप्न अधूरा ही रहेगा। 'ठाकुर का कुआँ' वर्तमान भारत का वह आईना है जिसमें संविधान की नैतिकता और गाँव की सामंती हकीकत आमने-सामने खड़े दिखाई देते हैं। यह कहानी नहीं, उस द्वंद्व का जिंदा सबूत है जो 1932 में 'ठाकुर के कुएं' पर खड़ा था और आज 'डिजिटल इंडिया' के हर सार्वजनिक नल पर खड़ा है।

बीज शब्द : ठाकुर का कुआँ, प्रेमचंद, गंगी, जोखू, विद्रोही चेतना, चौकन्नी दृष्टि, शत्रु का किला, शेर का मुँह, रस्सी छूटी, धड़ाम, हलकोरे, मैला-गंदा पानी, बदनसीब, रिवाजी पाबंदी, मनःस्थिति, जातिवाद, छुआछूत, आर्थिक विषमता, दलित स्त्री,

प्रस्तावना : "इस कुएँ का पानी सारा गाँव पीता है। किसी के लिए रोक नहीं; सिर्फ ये बदनसीब नहीं भर सकते।"[1] प्रेमचंद की 'ठाकुर का कुआँ' का यह आरंभिक वाक्य ही ग्रामीण भारत के 'सामाजिक संविधान' की मूल धारा है। वह संविधान जो भारत के संविधान से पुराना है और आज भी 'जगत की आड़' में लागू है। गंगी उसी 'जगत की आड़' में बैठी है। रात का समय है। "कुप्पी की धुँधली रोशनी"[2] कुएँ पर पड़ रही है। यह

रोशनी प्रतीकात्मक है – न पूरी उजली, न पूरी अंधेरी। बस इतनी कि 'बदनसीबी' साफ दिख जाए। गंगी के सामने 'ठाकुर का कुआँ' है, पीछे 'बीमार' जोखू है, और बीच में 'रिवाजी पाबंदियों' का समुद्र लहरा रहा है।

यह आलेख इसी 'समुद्र' को पार करने के असफल प्रयास की कहानी है। यह 'पानी' की कहानी नहीं, 'पहचान' की कहानी है। 'घड़े' की कहानी नहीं, 'गरिमा' की कहानी है। 'ठाकुर' की कहानी नहीं, 'व्यवस्था' की कहानी है और यह 'व्यवस्था' क्या है? यह कोई एक आदमी नहीं है। यह कोई एक घर नहीं है। यह एक 'अदृश्य जाल' है जो कुएँ की जगत से लेकर गंगी के कलेजे तक फैला है। व्यवस्था सबसे पहले 'जमीन' पर दिखती है। 'ठाकुर का कुआँ' गाँव के बीच में है। 'साहू का कुआँ' गाँव के उस सिरे पर है। 'सार्वजनिक कुआँ' कहीं नहीं है। यानी 'जल' भी 'भूगोल' से बँधा है। 'सत्ता' के केंद्र में है, 'वंचित' के पहुँच से दूर है। जोखू का यह कहना "हाथ-पांव तुड़वा आयेगी और कुछ न होगा।"[3] यह सिर्फ जोखू का 'डर' नहीं है। यह पूरी 'व्यवस्था का घोषणापत्र' है जो बताता है कि 'गुलामी' की सबसे बड़ी निशानी यह है कि 'गुलाम' खुद ही 'जंजीर' की पहरेदारी करने लगे हैं।

गंगी की मनःस्थितिः विद्रोह से विसर्जन तक की यात्रा : गंगी इस दृश्य में 'चरित्र' से अधिक 'चेतना' है। उसकी मनःस्थिति चार स्पष्ट चरणों में विभाजित की जा सकती है, जो प्रेमचंद के पाठ में अंतर्निहित है।

1. **विद्रोही चेतना का उन्मेष** : जोखू को 'ताजा पानी' चाहिए। घर में न घड़ा है, न पैसे। तभी गंगी का "विद्रोही दिल रिवाजी पाबंदियों और मजबूरियों पर चोटें करने लगा"।[4] वह पूछती है: "हम क्यों नीच हैं और यह लोग क्यों ऊँचे हैं? इसलिए कि ये लोग गले में तागा डाल लेते हैं?"[5] यह प्रश्न 'धर्मशास्त्र' से नहीं, 'समाजशास्त्र' से उपजा है। गंगी ठाकुर, पंडित, साहू तीनों की चर्चा करते हुए कहती है "तीनों एक-से-एक छंटे हैं? चोरी ये करें, जाल-फरेब ये करें, झूठे मुकदमे ये करें। अभी इस ठाकुर ने तो उस दिन बेचारे गड़रिये की एक भेड़ चुरा ली थी और बाद में मार कर खा गया। इन्हीं पंडित जी के घर में बारहों मासा जुआ होता है। यही साहूजी तो घी में तेल मिलाकर बेचते हैं।"[6] फिर भी वे 'ऊँचे' हैं। फिर गंगी इसका उत्तर स्वयं देते हुए कहती है- "हाँ, मुँह में हमसे ऊँचे हैं। हम गली-गली चिल्लाते नहीं कि हम ऊँचे हैं।"[7] यह 'मुँह से ऊँचा' होना ही जातिवाद का मूल सिद्धांत है। 'ऊँचाई' का संबंध 'सदाचार' से नहीं, 'सत्ता' से है। 'चिल्लाने' की क्षमता से है। 'तागा' डालने से है। गंगी के पास 'सत्य' है, पर 'शोर' नहीं। ठाकुर के पास 'असत्य' है, पर 'दरवाजा' है। और वह दरवाजा 'शेर के मुँह' जैसा है।

इस चरण में गंगी 'दलित' से 'दार्शनिक' बन जाती है। वह समझ जाती है कि 'नीच' होना 'कर्मफल' नहीं, 'सामाजिक निर्णय' है। और जो 'निर्णय' मनुष्य ने लिया है, उसे मनुष्य बदल भी सकता है। एक क्षण के लिए उसके भीतर 'ज्योतिबा फुले' बोलते हैं। 'आंबेडकर' करवट लेते हैं। वह 'बदनसीब' नहीं, 'बागी' हो जाती है।

2. **भय का मनोविज्ञान :** विद्रोह की चिंगारी 'यथार्थ' के सैलाब में डूब जाती है। गंगी रस्सी का फंदा घड़े में डालती है और अपने आस-पास चौकन्नी दृष्टि से देखती है कि कोई उसे देख तो नहीं रहा। इस समय ऐसा प्रतीत होता है "जैसे कोई सिपाही रात को शत्रु के किले में सुराख कर रहा हो।"[8] 'पानी भरना' यहाँ 'सैन्य अभियान' बन गया है और 'कुआँ' प्राकृतिक स्रोत न रहकर 'शत्रु का किला' बन गया है तथा 'गंगी' 'घुसपैठिया' घोषित कर दी जाती है। आखिर यह कैसा समाज है जो इनसे इनका 'प्राकृतिक अधिकार' भी छीन रहा है। 'चौकन्नी दृष्टि' गंगी के 'तन' और 'मन' दोनों के आतंक को व्यक्त करती है। वह केवल 'आँख' से नहीं देख रही। वह 'त्वचा' से खतरे को महसूस कर रही है। 'कान' से पत्ते की खड़खड़ाहट को 'कदमों की आहट' समझ रही है। क्योंकि वह जानती है: "अगर इस समय वह पकड़ ली गयी, तो फिर उसके लिए माफी या रियायत की रत्ती-भर उम्मीद नहीं"।[9] इस समय गंगी का 'विद्रोही मन' 'डरा हुआ मन' बन जाता है। मन के सारे 'सवाल' मर जाते हैं। 'दिमाग' को कुछ नहीं सूझता। बस जिंदा रहती है 'अछूत' होने की भावना। छुआछूत की सबसे बड़ी विजय यही है – उसने 'शरीर' को अछूत बनाने से पहले 'मस्तिष्क' को अछूत बना दिया।

3. **निर्जीव होता जीवन :** गंगी 'घड़ा' को कुएँ में इस प्रकार उतारती है कि लेशमात्र भी ध्वनि उत्पन्न न हो: "घड़े ने पानी में गोता लगाया, बहुत ही आहिस्ता। जरा भी आवाज न हुई"।[10] यह 'आहिस्ता' उसकी 'विवशता' का ही ग्राफ है जो उसे

'जीवित' रहते हुए भी 'निर्जीव' घोषित कर रहा है। वह जल्द से जल्द अपना घड़ा भर लेना चाहती है इसलिए वह अपना हाथ तेजी से चलाती है उसके हाथ चलाने की तीव्रता इतनी होती है कि "कोई बड़ा शहजोर पहलवान भी इतनी तेजी से उसे न खींच सकता था।"[11] यह 'तेजी' 'शक्ति' की नहीं, 'मृत्यु-भय' की है। 'भय' मनुष्य में 'अतिमानवीय' बल उत्पन्न कर देता है। गंगी उस क्षण 'पहलवान' है, पर यह 'कुश्ती' 'मेडल' के लिए नहीं, 'जीवन' के लिए है। एक पल को लगता है कि गंगी जीत गई। 'पानी' मिल जाएगा। 'जोखू' बच जाएगा। 'मान' रह जाएगा। पर ग्रामीण यथार्थ में 'सुखांत' वर्जित है।

4. **हलकोरों में डूबता संविधान :** गंगी झुककर जैसे ही घड़े को जगत पर रखने वाली होती है एकाएक ठाकुर साहब का दरवाजा खुल जाता है। ऐसी परिस्थिति में प्रेमचंद यहाँ महाकाव्यात्मक बिंब स्थापित करते हुए लिखते हैं: "शेर का मुँह इससे अधिक भयानक न होगा"।[12] गंगी के हाथ से रस्सी छूट जाती है और घड़ा 'धड़ाम' से पानी में जा गिरता है। घड़े के पानी में गिरने से बहुत देर तक पानी में हलकोरे की आवाज सुनाई देती रहीं। हलकोरे क्यों? क्योंकि 'अन्याय' की 'प्रतिध्वनि' दीर्घकालिक होती है। 'घड़ा' क्षण में डूब जाता है, पर 'लहरें' देर तक उठती हैं। वे 'लहरें' गंगी के 'भंग हुए स्वप्न' की हैं। वे 'लहरें' जोखू की 'बढ़ती प्यास' की हैं। वे 'लहरें' हमारी 'मृत संवेदना' की हैं।

ग्रामीण समाज की मार्मिकता: तीन जंजीरें : 'ठाकुर का कुआँ' का यह अंश ग्रामीण भारत की मार्मिकता को तीन परस्पर गुँथी जंजीरों के माध्यम से व्यक्त करता है।

1 जातिवाद की जंजीर : गंगी का यह सोचना कि इस कुएँ का पानी सारा गाँव पिता है। किसी के लिए रोक नहीं है पर हमपर बंदिश क्यों है। जब प्रकृति ने हमारे साथ भेदभाव नहीं किया तो आखिर समाज ने ऐसा क्यों किया। गंगी 'चोर' नहीं, 'जुआरी' नहीं, 'मिलावटखोर' नहीं। फिर भी 'नीच' है। ठाकुर 'भेड़ का चोर' होकर भी 'ऊँचा' है। क्योंकि 'जाति' का निर्धारण 'आचरण' से नहीं, 'उत्पत्ति' से होता है। और 'उत्पत्ति' को कोई संशोधित नहीं कर सकता। इसलिए यह जंजीर 'जन्मजात' है, 'आजीवन' है।

2 आर्थिक शोषण की जंजीर : जोखू बीमार है। गंगी के पास घड़े के लिए भी पैसे नहीं हैं। पर उसे जल पिलाना भी जरुरी है। उनके पास 'साहू का कुआँ' विकल्प के रुप में जरूर है, पर वहाँ एक के पाँच लगेंगे। अर्थात 'जाति' ने 'कुएँ' से वंचित किया, 'धन' ने 'घड़े' से वंचित कर दिया। 'साहू' वही है जो घी में मिलावट का काम करते हैं और 'नैतिक रुप से दिवालिया' होकर भी 'आर्थिक रुप से संपन्न' है। गंगी 'नैतिक रुप से समृद्ध' होकर भी 'आर्थिक रुप से तंग' है। यह 'विलोम न्यायशास्त्र' ही ग्रामीण अर्थतंत्र का आधार है।

3. लैंगिक उत्पीड़न की जंजीर : कुएँ पर स्त्री-संवाद ग्रामीण पितृसत्ता का कच्चा चिट्ठा खोलता है। एक स्त्री दूसरे स्त्री को कहती है: "खाना खाने चले और हुक्म हुआ कि ताजा पानी भर लाओ"।[13] यह वाक्य पुरुष सत्ता के उस 'निर्विवाद अधिकार' को दर्शाता है जहाँ स्त्री का श्रम 'स्वाभाविक कर्तव्य' मान लिया गया है। दूसरा कथन इससे भी तीखा है: "लौंडिया नहीं तो और क्या हो तुम? रोटी-कपड़ा नहीं पातीं?"।[14] यहां स्त्री को 'संगिनी' नहीं बल्कि वह काम करने वाली 'बाई' समझा जाता है जिसके कार्य करने के बदले में रोटी और कपड़ा दिया जाता है।

'मैला-गंदा पानी': सभ्यता का पराजय-बिंदु : "घर पहुँचकर देखा कि जोखू लोटा मुँह से लगाये वही मैला-गंदा पानी पी रहा है"।[15] यह 'मैला-गंदा पानी' केवल जोखू नहीं पीता। समकालीन भारत पीता है। दलित विद्यार्थी 'जातिगत अपमान' का पानी पीकर शिक्षा ग्रहण करता है – यही मैला-गंदा पानी है। सीमान्त किसान 'साहूकारी ऋण' का पानी पीकर आत्महत्या करता है – यही मैला-गंदा पानी है। प्रवासी मजदूर '12-घंटे श्रम' का पानी पीकर महानगरों में खटता है – यही मैला-गंदा पानी है।

जोखू 'बीमार' है। 'मैला-गंदा पानी' उसकी 'बीमारी' को और बढ़ाएगा। पर 'तृष्णा' तत्काल मार देगी। यह 'विलंबित मृत्यु' और 'तात्कालिक मृत्यु' के बीच चयन है। ग्रामीण भारत प्रतिदिन यह चयन करता है। और 'विलंबित मृत्यु' को चुनता है। क्योंकि 'आशा' जीवित रहती है कि कदाचित कल 'स्वच्छ जल' उपलब्ध हो जाए। कदाचित कल गंगी की

'रस्सी' न छूटे। कदाचित कल ठाकुर का 'दरवाजा' न खुले। पर 'कल' आता नहीं। 'धड़ाम' प्रतिदिन होता है। 'हलकोरे' प्रतिदिन उठते हैं। 'रस्सी' प्रतिदिन छूटती है।

निष्कर्ष: जगत की आड़ से जगत के मध्य तक : 'ठाकुर का कुआँ' का 'धड़ाम' इक्कीसवीं सदी में भी प्रतिध्वनित हो रहा है। वह 'हाथरस' के 'रात्रि-दाहसंस्कार' में सुनाई देता है। 'राजस्थान' के 'मटका-कांड' में सुनाई देता है। 'महाराष्ट्र' के 'खैरलांजी' में सुनाई देता है। 'घड़ा' अब भी गिरता है। 'रस्सी' अब भी छूटती है। 'हलकोरे' अब भी उठते हैं। प्रेमचंद ने 'समाधान' नहीं दिया। उन्होंने 'समस्या' को 'धड़ाम' से हमारे सम्मुख पटक दिया। ताकि 'ध्वनि' हमारी 'श्रवण-चेतना' को भेद दे। ताकि 'हलकोरे' हमारे 'सामाजिक जमीर' को आंदोलित कर दें।

समाधान त्रि-आयामी है। प्रथम, 'शेर के मुँह' वाले दरवाजे को ध्वस्त करना होगा। 'दरवाजा' 'आतंक' का प्रतीक है। 'अनुसूचित जाति/जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम' का 'कठोर क्रियान्वयन' ही इस दरवाजे को तोड़ सकता है। जब 'ठाकुर' को ज्ञात होगा कि 'कौन है' पूछते ही वह 'कारागार' जाएगा, तो वह दरवाजा नहीं खोलेगा।

द्वितीय, 'मैला-गंदा पानी' को विसर्जित करना होगा। 'विकल्पहीनता' सबसे बड़ा शोषण है। 'जल जीवन मिशन' में केवल 'नल' नहीं, 'न्याय' पहुँचाना होगा। 'खाद्य सुरक्षा' ही नहीं, 'गरिमा सुरक्षा' सुनिश्चित करनी होगी। जब जोखू के पास 'स्वच्छ जल' का 'विकल्प' होगा, तो वह 'मैला-गंदा' नहीं पिएगा।

तृतीय, और सर्वाधिक महत्वपूर्ण – गंगी को पुनः कुएँ पर भेजना होगा। पर इस बार 'एकाकी' नहीं। 'सामूहिक रूप से'। 'निशीथ' में नहीं, 'मध्याह्न' में। 'निःशब्द' नहीं, 'नगाड़े' के साथ। जब 'शत-शत गंगी' एक साथ 'जगत' पर खड़ी होंगी, तो 'ठाकुर' का दरवाजा 'शेर का मुँह' नहीं रहेगा। वह 'भयभीत बिल्ली' बन जाएगा। वह प्रश्न नहीं करेगा 'कौन है?', वह निवेदन करेगा 'कितने घड़े भरने हैं बहन?।'

'कुआँ' विद्यमान है। 'जल' भी विद्यमान है। अभाव 'साहस' का है। वह 'साहस' जो 'रिवाजी पाबंदियों पर चोट' करे। वह 'साहस' जो 'माफी की अपेक्षा' न करे, 'अधिकार की माँग' करे। जिस दिन गंगी 'जगत की आड़' से निकलकर 'जगत के मध्य' खड़ी हो जाएगी, उस दिन 'ठाकुर का कुआँ' 'संविधान का कुआँ' बन जाएगा। तब 'रस्सी' नहीं छूटेगी। 'घड़ा' नहीं डूबेगा। 'मनुष्यता' पराजित नहीं होगी। क्योंकि 'जल' पर 'जाति' का नहीं, 'सृष्टि' का अधिकार होता है।

संदर्भ सूची :

1. प्रेमचंद, मुंशी. 'ठाकुर का कुआँ', मानसरोवर: भाग-1, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2020,पृ. 105
2. प्रेमचंद, मुंशी. 'ठाकुर का कुआँ', मानसरोवर: भाग-1, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2020,पृ. 105
3. प्रेमचंद, मुंशी. 'ठाकुर का कुआँ', मानसरोवर: भाग-1, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2020, पृ. 104
4. प्रेमचंद, मुंशी. 'ठाकुर का कुआँ', मानसरोवर: भाग-1, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2020, पृ. 105
5. प्रेमचंद, मुंशी. 'ठाकुर का कुआँ', मानसरोवर: भाग-1, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2020, पृ. 105
6. प्रेमचंद, मुंशी. 'ठाकुर का कुआँ', मानसरोवर: भाग-1, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2020,पृ. 105
7. प्रेमचंद, मुंशी. 'ठाकुर का कुआँ', मानसरोवर: भाग-1, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2020,पृ. 105
8. प्रेमचंद, मुंशी. 'ठाकुर का कुआँ', मानसरोवर: भाग-1, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2020,पृ. 106
9. प्रेमचंद, मुंशी. 'ठाकुर का कुआँ', मानसरोवर: भाग-1, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2020, पृ. 106
10. प्रेमचंद, मुंशी. 'ठाकुर का कुआँ', मानसरोवर: भाग-1, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2020,पृ. 106
11. प्रेमचंद, मुंशी. 'ठाकुर का कुआँ', मानसरोवर: भाग-1, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2020,पृ. 106
12. प्रेमचंद, मुंशी. 'ठाकुर का कुआँ', मानसरोवर: भाग-1, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2020, पृ. 106
13. प्रेमचंद, मुंशी. 'ठाकुर का कुआँ', मानसरोवर: भाग-1, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2020,पृ. 105
14. प्रेमचंद, मुंशी. 'ठाकुर का कुआँ', मानसरोवर: भाग-1, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2020,पृ. 105
15. प्रेमचंद, मुंशी. 'ठाकुर का कुआँ', मानसरोवर: भाग-1, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2020,पृ. 105